आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित

जीवसमास प्ररूपणा

Presentation Developed By:
Smt Sarika Vikas Chhabra

जेहिं अणेया जीवा, णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी।
ते पुण संगहिदत्था, जीवसमासा त्ति विण्णेया ॥70॥

- अर्थ - जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जाय,
- उन धर्मों को अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाले होने से जीवसमास कहते हैं – ऐसा समझना चाहिये ॥70॥

जीवसमास किसे कहते हैं ?

जीव + समास = जीवों को + इकट्ठा करने वाले सदृश धर्म

जिन समान पर्यायरूप धर्मों के द्वारा

अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जाये

उन धर्मों को अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाले होने से

जीवसमास कहते हैं।

तसचदुजुगाण मज्झे, अविरुद्धेहिं जुदजादिकम्मुदये।
जीवसमासा होंति हु, तब्भवसारिच्छसामण्णा ॥71॥

- अर्थ - त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-साधारण — इन चार युगलों में से अविरुद्ध त्रसादि कर्मों से युक्त
- जाति नामकर्म का उदय होने पर
- जीवों में होने वाले ऊर्ध्वतासामान्यरूप या तिर्यक्सामान्यरूप धर्मों को
- जीवसमास कहते हैं ॥71॥

ऊर्ध्वता-सामान्य

अनेक समयों की पर्याय जिस एक द्रव्य में है, वह एक द्रव्यरूप अन्वय; ऊर्ध्वता-सामान्य या तद्भव-सामान्य है । जैसे :-

इनमें एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय आदि अवस्थाओं में अन्वय भाव पाया जा रहा है।

इन एकेंद्रिय आदि जीव की अवस्थाओं में जीवत्व को ऊर्ध्वता-सामान्य धर्म कहते हैं ।

एक जीव द्रव्य की अवस्थायें

पंचेन्द्रिय
त्रीन्द्रिय
पंचेन्द्रिय
पंचेन्द्रिय
द्वीन्द्रिय
एकेंद्रिय
द्वीन्द्रिय
एकेंद्रिय
द्वीन्द्रिय
एकेंद्रिय
एकेंद्रिय

ऊर्ध्वता-सामान्य

तिर्यक्सामान्य

एक समय में अनेक व्यक्तियों में पाया जाने वाला जातिरूप अन्वय; सादृश्य-सामान्य या तिर्यक्सामान्य है ।

जैसे बादाम, केशर, हापूस, तोतापरी, नीलम आदि अनेक आमों में आमपना समान धर्म है ।

वैसे पृथ्विकायिक, वायुकायिक आदि अनेक जीवों में एकेंद्रिय-युक्तपना समान है।

इसलिए इन्हें सादृश्य-सामान्य कहते हैं।

ये सादृश्य-सामान्य ही जीवसमास कहलाते हैं ।

स्थावर - त्रस

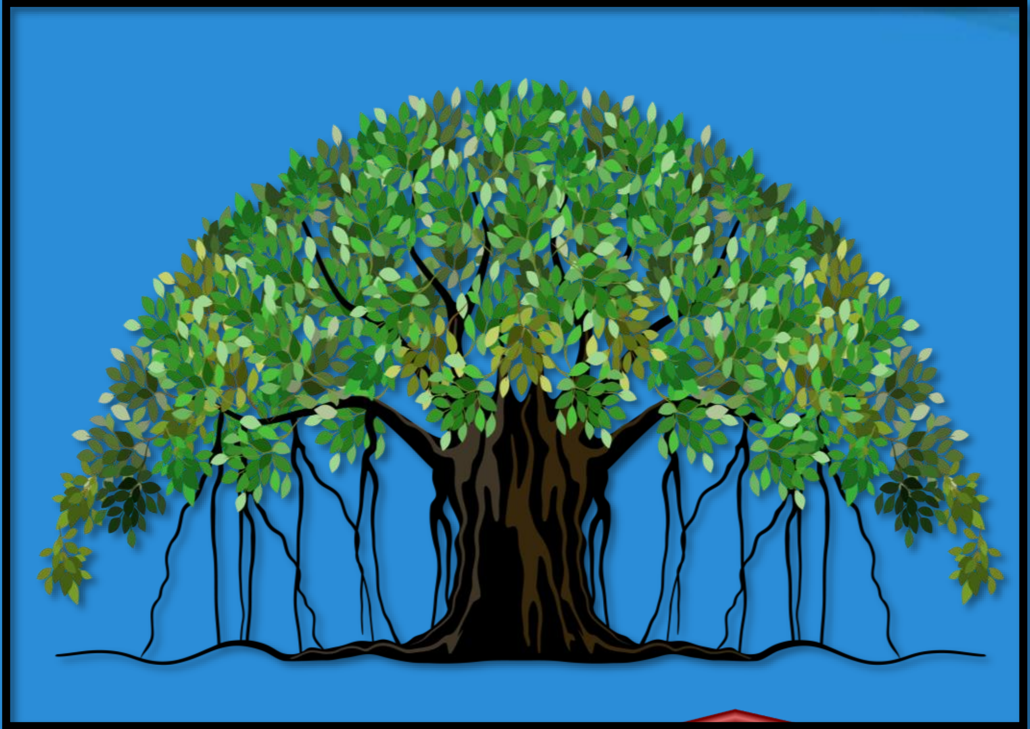

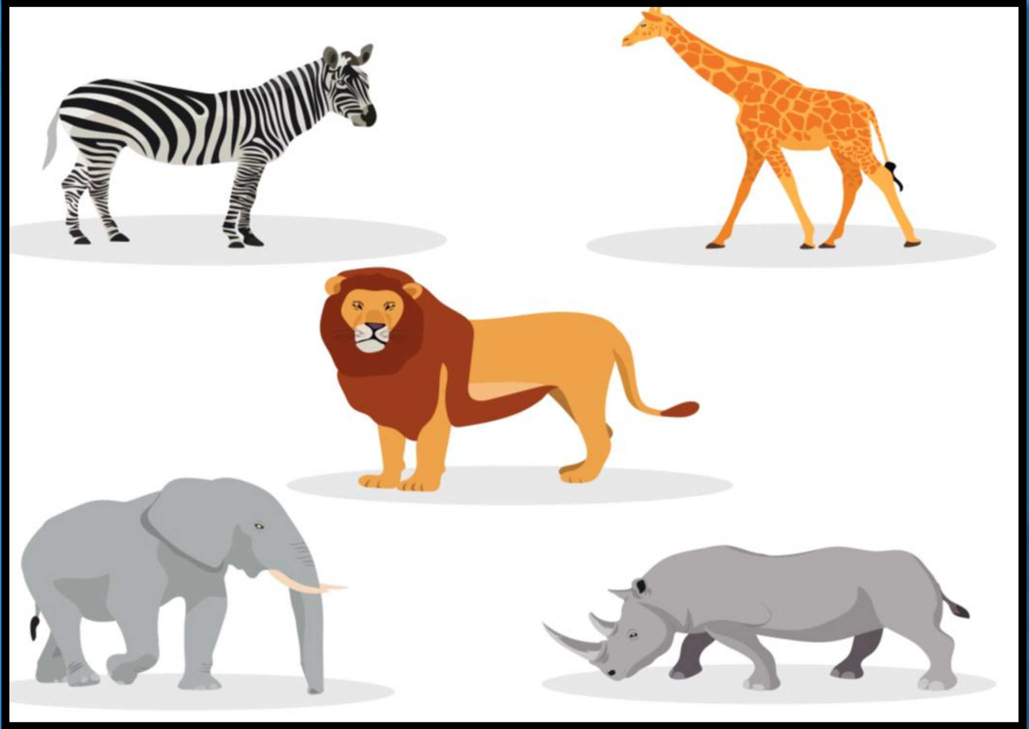

जिसके उदय से एकेंद्रिय में उत्पन्न हो, उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से द्वीन्द्रिय आदि में उत्पन्न हो, उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।

सूक्ष्म - बादर

जिसके उदय से किसी से रुके नहीं, किसी को रोके नहीं ऐसे शरीर की प्राप्ति हो, उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से अन्य से रुके, अन्य को रोके ऐसे शरीर की प्राप्ति हो, उसे बादर नाम कर्म कहते हैं।

साधारण - प्रत्येक

जिसके उदय से एक शरीर के अनंत स्वामी हो, ऐसे शरीर की प्राप्ति हो, उसे साधारण नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से एक शरीर का एक ही स्वामी हो, उसे प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं।

पर्याप्त - अपर्याप्त

जिसके उदय से आहार आदि पर्याप्ति पूर्ण हो, उसे पर्याप्त नाम कर्म कहते हैं ।

जिसके उदय से आहार आदि एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हो, उसे अपर्याप्त नाम कर्म कहते हैं । ऐसा जीव अंतर्मुहूर्त में ही मरण को प्राप्त हो जाता है ।

एकेंद्रिय आदि जाति कर्म

जिसके उदय से 'जीव एकेंद्रिय है' ऐसा कहा जाता है, उसे एकेंद्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से 'जीव द्वीन्द्रिय है' ऐसा कहा जाता है, उसे द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से 'जीव त्रीन्द्रिय है' ऐसा कहा जाता है, उसे त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से 'जीव चतुरिंद्रिय है' ऐसा कहा जाता है, उसे चतुरिंद्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

जिसके उदय से 'जीव पंचेन्द्रिय है' ऐसा कहा जाता है, उसे पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

किन धर्मों के साथ किन धर्मों का विरोध और अविरोध है?

क्रं	किसका	किसके साथ विरोध	अविरोध
1	एकेन्द्रिय	त्रस, द्वीन्द्रियादि जाति	शेष प्रकृतियाँ
2	द्वीन्द्रियादि	स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय	,,
3	त्रस	स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय	,,
4	स्थावर	त्रस, द्वीन्द्रियादि जाति	,,
5	बादर	सूक्ष्म	,,
6	सूक्ष्म	त्रस, बादर, द्वीन्द्रियादि जाति	,,
7	पर्याप्त	अपर्याप्त	,,
8	अपर्याप्त	पर्याप्त	,,
9	प्रत्येक	साधारण	,,
10	साधारण	त्रस, प्रत्येक, द्वीन्द्रियादि जाति	,,

बादरसुहुमेइंदिय, बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णी य।
पज्जत्तापज्जत्ता, एवं ते चोद्दसा होंति ॥72॥

- अर्थ - एकेन्द्रिय के बादर, सूक्ष्म दो भेद;
- पुनश्च विकलत्रय के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तीन भेद;
- पुनश्च पंचेन्द्रिय के संज्ञी, असंज्ञी दो भेद;
- – इस तरह सात जीव भेद हुये।
- ये एक-एक भेद पर्याप्त-अपर्याप्तरूप हैं।
- इस तरह संक्षेप से चौदह जीवसमास होते हैं ॥72॥

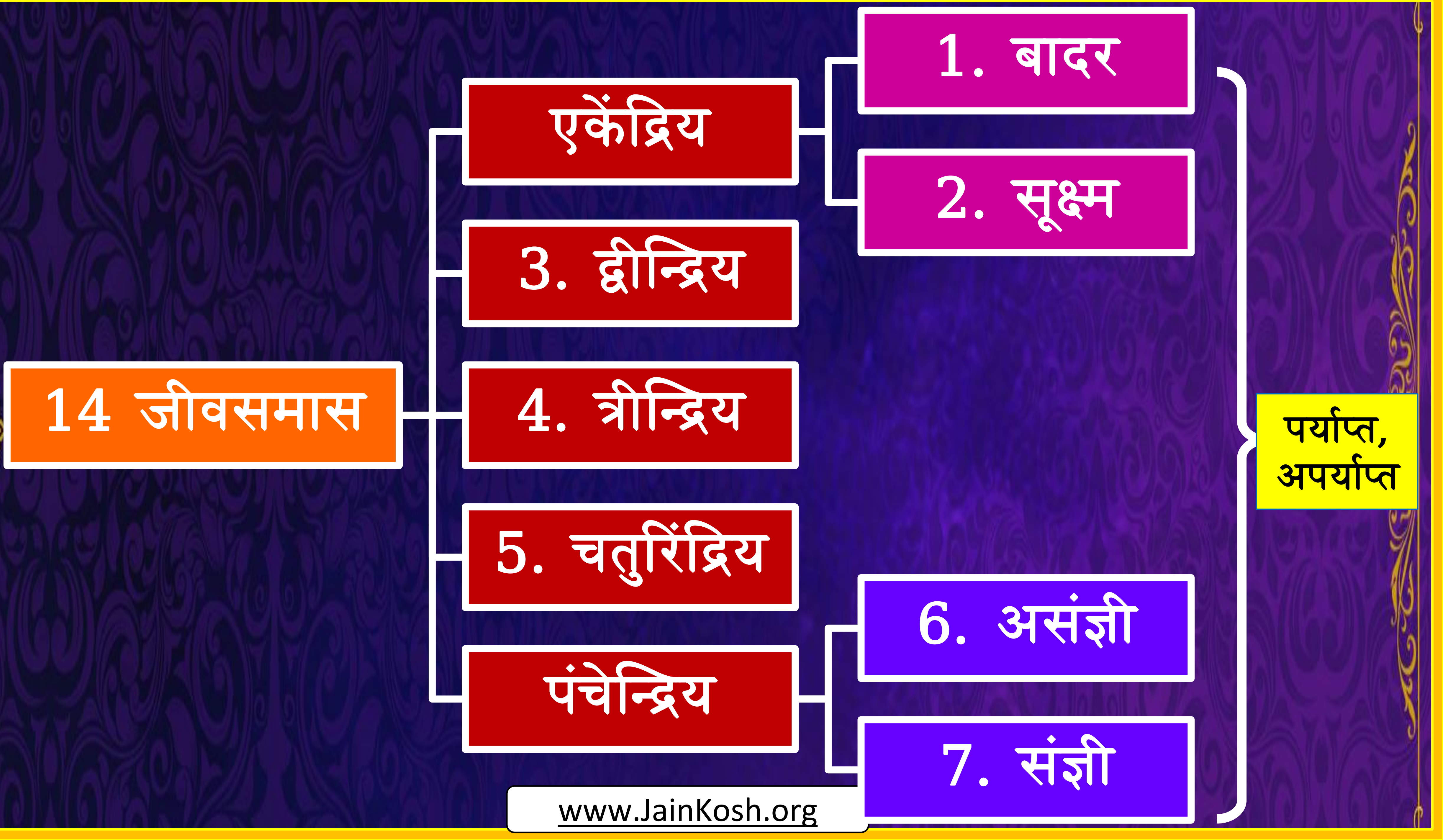

14 जीवसमास

एकेंद्रिय

1. बादर

2. सूक्ष्म

3. द्वीन्द्रिय

4. त्रीन्द्रिय

5. चतुरिंद्रिय

पंचेन्द्रिय

6. असंज्ञी

7. संज्ञी

पर्याप्त,
अपर्याप्त

www.JainKosh.org

पूर्वोक्त 13 कर्मों में से कितने कर्म प्रयोग किये?

5 जाति कर्म

पर्याप्त – अपर्याप्त

बादर - सूक्ष्म

अर्थात् 9

शेष का प्रयोग आगे विस्तार में किया जाएगा ।

www.JainKosh.org

भूआउतेउवाऊ, णिच्चदुग्गदिणिगोदथूलिदरा। पत्तेयपदिट्ठिदरा, तस पण पुण्णा अपुण्णदुगा ॥73॥

- अर्थ - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नित्य-निगोद, इतर (चतुर्गति) निगोद —
- इन छह के बादर और सूक्ष्म के भेद से बारह भेद होते हैं तथा
- प्रत्येक वनस्पति के दो भेद — एक प्रतिष्ठित, दूसरा अप्रतिष्ठित और
- त्रस के पाँच भेद — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय
- इस तरह सब मिलाकर उन्नीस भेद होते हैं ॥73॥

एकेंद्रिय

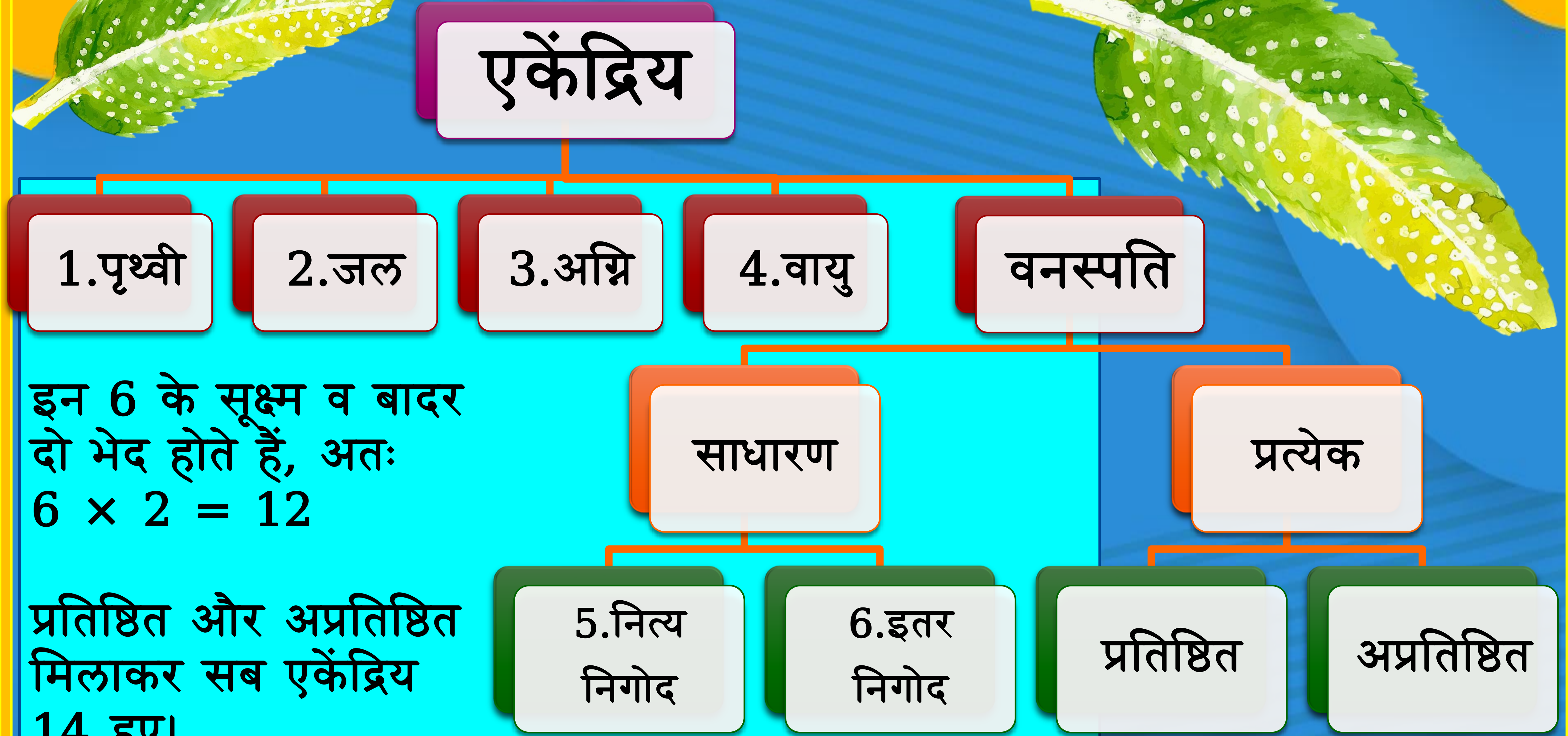

1.पृथ्वी

2.जल

3.अग्नि

4.वायु

वनस्पति

साधारण

प्रत्येक

5.नित्य निगोद

6.इतर निगोद

प्रतिष्ठित

अप्रतिष्ठित

इन 6 के सूक्ष्म व बादर दो भेद होते हैं, अतः
6 × 2 = 12

प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित मिलाकर सब एकेंद्रिय 14 हुए।

www.JainKosh.org

निगोद

नि =	अनन्तपना है निश्चित जिनका, ऐसे जीवों को
गो =	एक ही क्षेत्र
द =	देता है

अर्थात् जो अनन्त जीवों को एक ही आवास दे उसको निगोद कहते हैं।

निगोद (साधारण) के भेद

नित्य निगोद

- जिसने अनादि काल से अभी तक त्रस पर्याय प्राप्त नहीं की है।

इतर निगोद

- जो देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होकर पुनः निगोद में उत्पन्न होते हैं।
- इसका दूसरा नाम चतुर्गति निगोद भी है।

19 जीवसमास

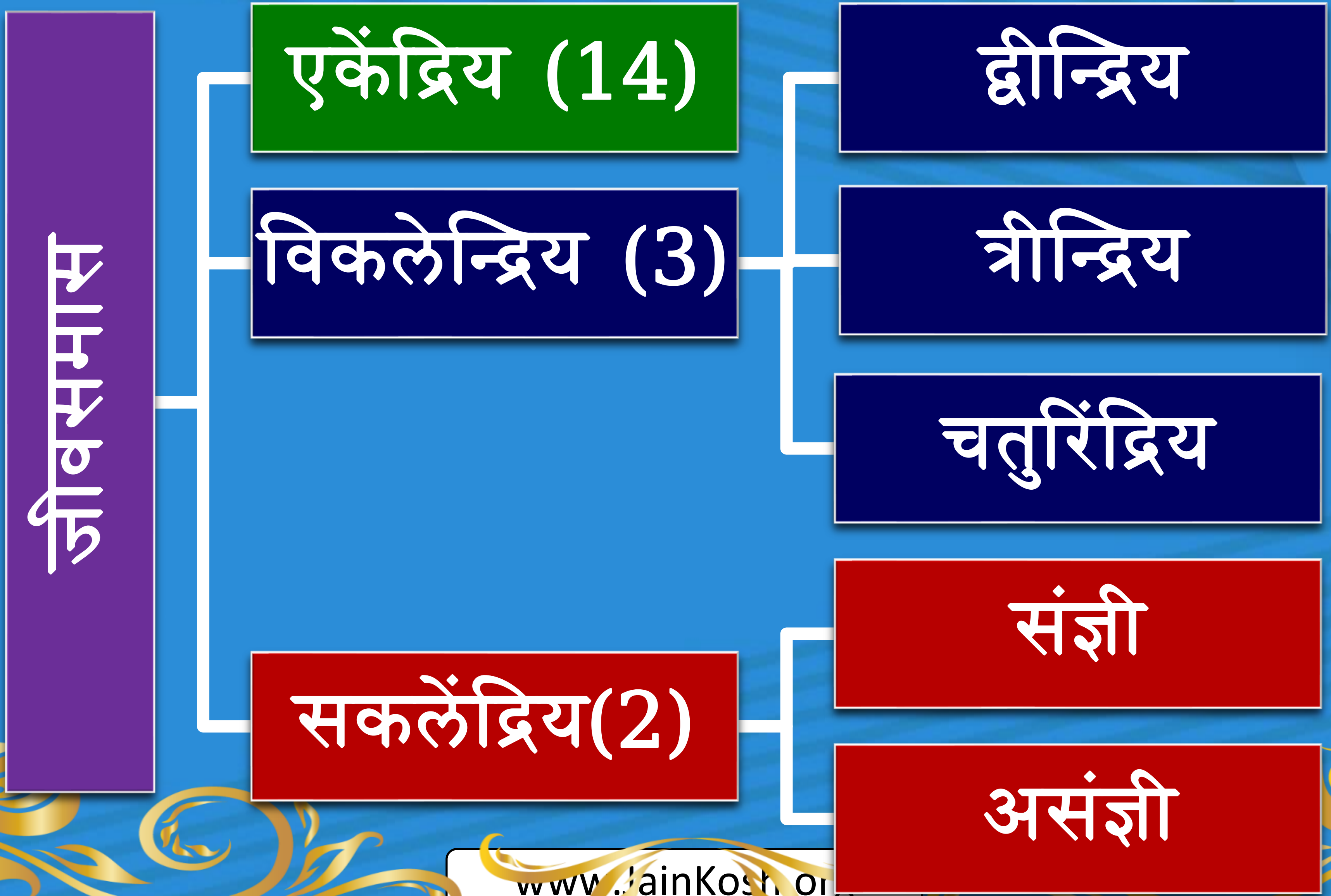

- जीवसमास
  - एकेंद्रिय (14)
  - विकलेन्द्रिय (3)
    - द्वीन्द्रिय
    - त्रीन्द्रिय
    - चतुरिंद्रिय
  - सकलेंद्रिय(2)
    - संज्ञी
    - असंज्ञी

पूर्वोक्त 13 कर्मों में से कितने कर्म प्रयोग किये?

5 जाति कर्म

सूक्ष्म - बादर

साधारण - प्रत्येक

त्रस - स्थावर

अर्थात् 11

शेष का प्रयोग आगे विस्तार में किया जाएगा ।

ठाणेहिं वि जोणीहिं वि, देहोग्गाहणकुलाण भेदेहिं।
जीवसमासा सव्वे, परूविदव्वा जहाकमसो ॥74॥

अर्थ - स्थान, योनि, शरीर की अवगाहना और कुलों के भेद — इन चार अधिकारों के द्वारा सम्पूर्ण जीवसमासों का क्रम से निरूपण करना चाहिये ॥74॥

www.JainKosh.org

जीवसमासों का निरूपण

स्थान	• 1, 2, 3 आदि विकल्प
योनि	• जीव का उत्पत्ति स्थान
शरीर की अवगाहना	• शरीर के छोटे-बड़े भेद (क्षेत्र अपेक्षा)
कुल	• शरीर को कारणभूत पुद्गल

सामण्णजीव तसथावरेसु इगिविगलसयलचरिमदुगे।
इंदियकाये चरिमस्स य दुतिचदुरपणगभेदजुदे॥75॥

- अर्थ - सामान्य से जीव का 1 ही भेद है।
- त्रस और स्थावर अपेक्षा से 2 भेद,
- एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय एवं सकलेन्द्रिय की अपेक्षा 3 भेद;
- पंचेन्द्रिय के 2 भेद करने पर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी इस तरह 4 भेद होते हैं।
- पाँच इन्द्रियों की अपेक्षा 5 भेद हैं।
- षट्काय की अपेक्षा 6 भेद हैं।
- पाँच स्थावरों में त्रस के विकल और सकल मिलाने पर 7 भेद तथा
- विकल, असंज्ञी, संज्ञी मिलाने से 8 भेद तथा
- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय मिलाने पर 9 भेद तथा
- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी मिलाने से 10 भेद होते हैं ॥75॥

जीवसमास के स्थान

स्थान	भेद
1	सामान्य जीव
2	त्रस, स्थावर
3	एकेंद्रिय, विकलेन्द्रिय, सकलेंद्रिय
4	एकेंद्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी
5	1, 2, 3, 4, 5 इन्द्रिय

जीवसमास के स्थान

स्थान	भेद
6	5 स्थावर, त्रस
7	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय, सकलेंद्रिय
8	5 स्थावर, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी
9	5 स्थावर, 2, 3, 4 इन्द्रिय, सकलेंद्रिय
10	5 स्थावर, 2, 3, 4 इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी

पणजुगले तससहिये, तसस्स दुतिचदुरपणगभेदजुदे।
छद्दुगपत्तेयम्हि य, तसस्स तियचदुरपणगभेदजुदे ॥76॥

अर्थ - पाँच स्थावरों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दश भेद में –

- त्रस सामान्य का एक भेद मिलाने से 11 तथा
- त्रस के विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय मिलाने से 12 तथा
- त्रस के विकलेन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी मिलाने से 13 और
- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय भेद मिलाने से 15 भेद जीवसमास के होते हैं।
- पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद इनके बादर सूक्ष्म की अपेक्षा 6 युगल और प्रत्येक वनस्पति, इनमें त्रस के उक्त विकलेन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी ये 3 भेद मिलाने से 16 और
- द्वीन्द्रियादि 4 भेद मिलाने से 17, तथा
- 5 भेद मिलाने से 18 भेद होते हैं ॥76॥

जीवसमास के स्थान

स्थान	भेद
11	5 स्थावरों के सूक्ष्म और बादर के भेद से 10, त्रस
12	10, विकलेन्द्रिय, सकलेंद्रिय
13	10, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी
14	10, 2, 3, 4 इन्द्रिय, सकलेंद्रिय
15	10, 2, 3, 4 इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी

जीवसमास के स्थान

स्थान	भेद
16	पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्य-निगोद, इतर-निगोद इनके बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा 6 युगल और प्रत्येक वनस्पति, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी
17	13 एके., 2, 3, 4 इन्द्रिय, सकलेंद्रिय
18	13 एके., 2, 3, 4 इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी

सगजुगलम्हि तसस्स य, पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा।
एयादुणवीसो त्ति य, इगिवितिगुणिदे हवे ठाणा ॥77॥

- अर्थ - पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद के बादर सूक्ष्म की अपेक्षा छह युगल और प्रत्येक का प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित की अपेक्षा एक युगल मिलाकर सात युगलों में त्रस के उक्त पाँच भेद मिलाने से जीवसमास के उन्नीस भेद होते हैं।
- इसप्रकार एक से लेकर उन्नीस तक जो जीवसमास के भेद गिनाये हैं, इनका एक, दो, तीन के साथ गुणा करने पर क्रम से उन्नीस, अड़तीस, सत्तावन अवान्तर भेद जीवसमास के होते हैं ॥77॥

19 जीवसमास

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद	= 6 × 2 (सूक्ष्म+बादर) = 12
प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक	= 2
2, 3, 4 इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय संज्ञी, पंचेन्द्रिय असंज्ञी	= 5

.org

सामण्णेण तिपंती, पढमा विदिया अपुण्णगे इदरे। पज्जत्ते लद्धिअपज्जत्तेऽपढमा हवे पंती ॥78॥

- अर्थ - उक्त उन्नीस भेदों की तीन पंक्ति करनी चाहिये।
- उसमें प्रथम पंक्ति सामान्य की अपेक्षा से है।
- दूसरी पंक्ति अपर्याप्त तथा पर्याप्त अपेक्षा से है।
- तीसरी पंक्ति पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त तथा लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा से है ॥78॥

जीवसमास के 57 स्थान

जीवसमास स्थान	सामान्य स्थान	अर्द्ध स्थान (पर्याप्त, अपर्याप्त)	पूर्ण स्थान (पर्याप्त, निर्वृत्ति-अपर्याप्त, लब्धि-अपर्याप्त)
1	1	2	3
2	2	4	6
3	3	6	9
4	4	8	12
5	5	10	15
6	6	12	18
⋮	⋮	⋮	⋮
⋮	⋮	⋮	⋮
19	1 × 19 = 19	2 × 19 = 38	3 × 19 = 57

पर्याप्ति अपेक्षा 3 प्रकार के जीव

	पर्याप्त	निर्वृत्त्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
स्वरूप	जिनकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी है	शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने से पूर्व की अवस्था	जिनकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही मरण हो जाये
किस नाम कर्म का उदय	पर्याप्त		अपर्याप्त

इगिवण्णं इगिविगले, असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं। गब्भभवे सम्मुच्छे, दुतिगं भोगथलखेचरे दो दो ॥79॥

- अर्थ - तिर्यग्गति में एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय संबंधी 51 भेद हैं।
- कर्मभूमिया गर्भज तिर्यंचों में जलचर, थलचर तथा नभचर सैनी एवं असैनी के पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त अपेक्षा 12 भेद तथा
- सम्मूर्च्छन तिर्यंचों में लब्ध्यपर्याप्तक भी होने से 18 भेद,
- - इसप्रकार पंचेन्द्रिय कर्मभूमिज तिर्यंचों के 30 भेद होते हैं।
- भोगभूमिया थलचर एवं नभचर तिर्यंचों के पर्याप्त एवं निर्वृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा 4 भेद होते हैं।
- इसप्रकार तिर्यग्गति संबंधी कुल 85 भेद होते हैं।
- भोगभूमि में जलचर, सम्मूर्च्छन तथा असंज्ञी जीव नहीं होते हैं ॥79॥

अज्जवमलेच्छमणुए, तिदु भोगकुभोगभूमिजे दो दो। सुरणिरये दो दो इदि, जीवसमासा हु अडणउदी ॥80॥

- अर्थ - आर्यखण्ड में पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त तीनों ही प्रकार के मनुष्य होते हैं।
- म्लेच्छखण्ड में लब्ध्यपर्याप्त को छोड़कर दो प्रकार के ही मनुष्य होते हैं।
- इसीप्रकार भोगभूमि, कुभोगभूमि, देव, नारकियों में भी दो-दो ही भेद होते हैं।
- इसलिये सब मिलाकर जीवसमास के 98 भेद हुए ॥80॥

- जीवसमास (98)
  - एकेंद्रिय (42)
  - विकलेन्द्रिय (9)
  - सकलेंद्रिय (47)
    - तिर्यंच (34)
    - मनुष्य (9)
    - देव (2)
    - नारकी (2)

एकेंद्रिय के 42 भेद

बादर + सूक्ष्म
6 × 2 =12

1. पृथ्वीकायिक
2. जलकायिक
3. अग्निकायिक
4. वायुकायिक
5. नित्य निगोद
6. इतर निगोद

2

7. प्रतिष्ठित वनस्पति
8. अप्रतिष्ठित वनस्पति

14 × 3 = 42

-पर्याप्त
-नि.अ.
-ल.अ.

कर्मभूमि तिर्यंच के 30 भेद

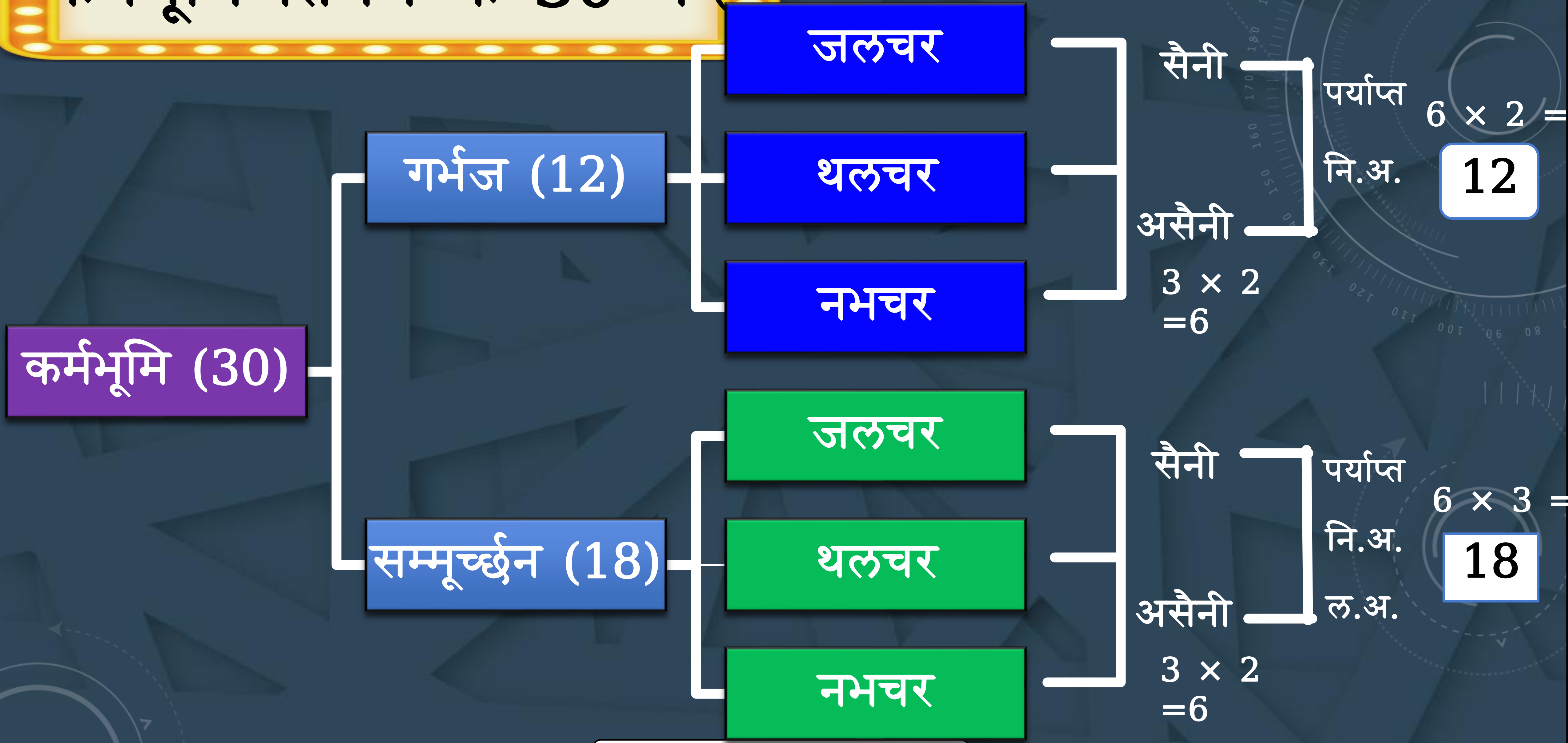

कर्मभूमि (30)

गर्भज (12)
- जलचर
- थलचर
- नभचर

सैनी
असैनी

3 × 2
=6

पर्याप्त
नि.अ.

6 × 2 =
12

सम्मूर्च्छन (18)
- जलचर
- थलचर
- नभचर

सैनी
असैनी

3 × 2
=6

पर्याप्त
नि.अ.
ल.अ.

6 × 3 =
18

भोगभूमि तिर्यंच के 4 भेद

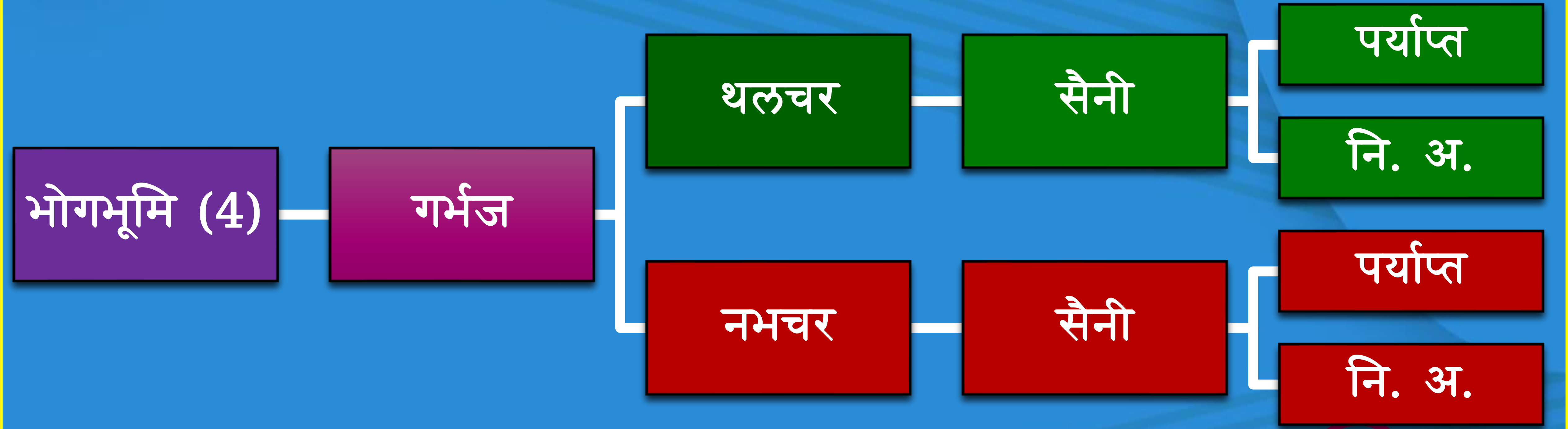

- भोगभूमि (4)
  - गर्भज
    - थलचर
      - सैनी
        - पर्याप्त
        - नि. अ.
    - नभचर
      - सैनी
        - पर्याप्त
        - नि. अ.

भोगभूमि में जलचर, सम्मूर्च्छन, असंज्ञी और अपर्याप्त जीव नहीं होते हैं ।

मनुष्य के 9 भेद

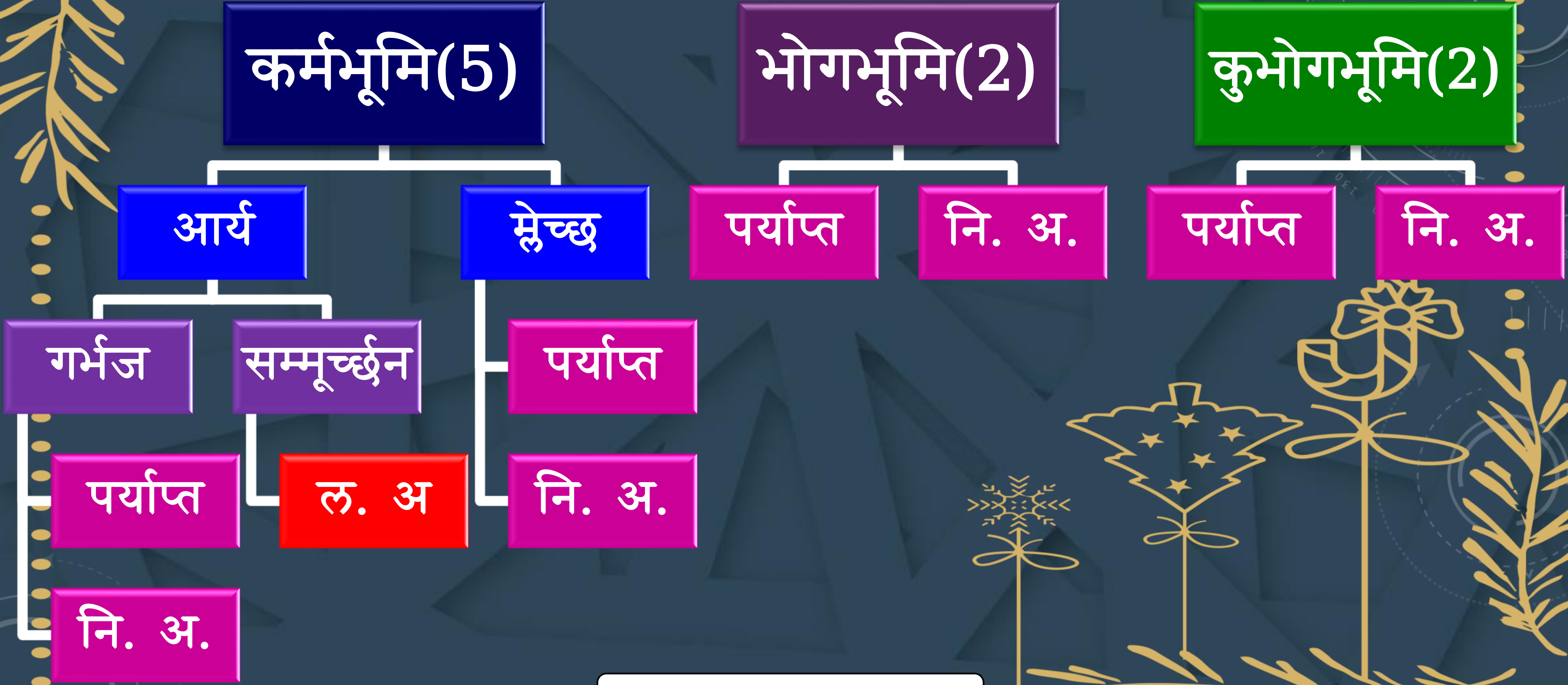

- कर्मभूमि(5)
  - आर्य
    - गर्भज
      - पर्याप्त
      - नि. अ.
    - सम्मूर्च्छन
      - ल. अ
  - म्लेच्छ
    - पर्याप्त
    - नि. अ.
- भोगभूमि(2)
  - पर्याप्त
  - नि. अ.
- कुभोगभूमि(2)
  - पर्याप्त
  - नि. अ.

www.JainKosh.org

देव और नारकी के 2-2 भेद

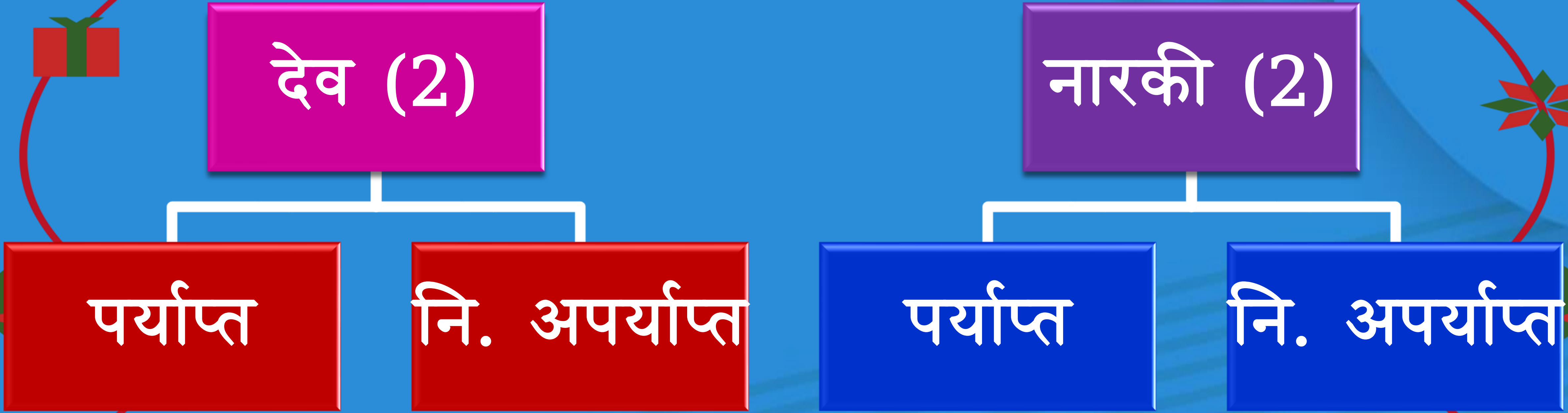

- देव (2)
  - पर्याप्त
  - नि. अपर्याप्त
- नारकी (2)
  - पर्याप्त
  - नि. अपर्याप्त

संखावत्तयजोणी, कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य।
तत्थ य संखावत्ते, णियमा दु विवज्जदे गब्भो ॥81॥

- अर्थ – शंखावर्त योनि, कूर्मोन्नत योनि, वंशपत्र योनि इसतरह स्त्री-शरीर में संभवित आकाररूप योनि तीन प्रकार की हैं।
- वहाँ तीन प्रकार की योनियों में शंखावर्त योनि में तो गर्भ नियम से विवर्जित है, गर्भ रहता ही नहीं है अथवा कदाचित् रहे तो नष्ट हो जाता है ॥81॥

योनि

जीव का उपजने का स्थान वह योनि है।

मिश्ररूप होकर औदारिकादि नोकर्मवर्गणारूप पुद्गलों से सहित बंधता है जीव जिसमें, वह योनि है।

योनि

आकृति

गुण

उत्पत्ति स्थान की आकृति के आधार पर भेद

उत्पत्ति स्थान के स्पर्शादि गुण के आधार पर भेद

कुम्मुण्णयजोणीये, तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य।
रामा वि य जायंते, सेसाए सेसगजणो दु ॥82॥

- अर्थ – कूर्मोन्नत योनि में तीर्थंकर वा सकलचक्रवर्ती वा अर्धचक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण वा बलभद्र उपजता है। 'अपि' शब्द से अन्य कोई नहीं उपजता।
- पुनश्च अवशेष वंशपत्र योनि में अवशेष जन उपजते हैं, तीर्थंकरादि नहीं उपजते ॥82॥

आकार योनि

- **शंखावर्त योनि** – गर्भ नियम से विवर्जित है, गर्भ रहता ही नहीं है
- **कूर्मोन्नत योनि** – तीर्थंकर वा सकल-चक्रवर्ती वा अर्धचक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण वा बलभद्र उपजते हैं
- **वंशपत्र योनि** – अवशेष जन उपजते हैं, तीर्थंकरादि नहीं उपजते

जम्मं खलु सम्मुच्छण, गब्भुववादा दु होदि तज्जोणी।
सच्चित्त-सीद-संउड, सेदर मिस्सा य पत्तेयं ॥83॥

- अर्थ - जन्म तीन प्रकार का होता है – सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद।
- सचित्त, शीत, संवृत, और इनसे विपरीत अचित्त, उष्ण, विवृत तथा तीनों की मिश्र, इस तरह तीनों ही जन्मों की आधारभूत नौ गुणयोनि हैं।
- इनमें से यथासम्भव प्रत्येक योनि को सम्मूर्छनादि जन्म के साथ लगा लेना चाहिये ॥83॥

जन्म के प्रकार

गर्भ	माता पिता के रज-वीर्य से उत्पत्ति होना
उपपाद	संपुट शय्या या उष्ट्रादि मुखाकार योनि में अंतर्मुहूर्त काल में ही जीव का उत्पन्न होना
सम्मूर्छन	सब ओर से परमाणु ग्रहण कर शरीर की रचना होना

पोतजरायुजअंडज, जीवाणं गब्भ देवणिरयाणं।
उववादं सेसाणं, सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं ॥84॥

- अर्थ - जिसके शरीर के ऊपर कोई आवरण नहीं है, जिसके अवयव सम्पूर्ण हैं और योनि से निकलते ही चलना आदि की सामर्थ्य से संयुक्त है वह जीव, पोत कहलाता है।
- प्राणी के शरीर के ऊपर जाल समान आवरण - मांस, लहू जिसमें विस्ताररूप पाया जाता है ऐसा जो जरायु, उसमें उत्पन्न जीव जरायुज कहलाता है।
- शुक्र, लहूमय तथा नख के समान कठिन आवरण सहित, गोल आकार का धारक वह अण्ड, उसमें उपजने वाला जीव अंडज कहलाता है।
- इन पोत, जरायुज, अंडज जीवों का गर्भरूप ही जन्म का भेद जानना। देव और नारकीयों का उपपाद ही जन्म का भेद हैं। पूर्वोक्त जीवों के बिना शेष समस्त जीवों का सम्मूर्छन ही जन्म का भेद सिद्धांत में कहा है ॥84॥

www.JainKosh.org

गर्भ जन्म के 3 प्रकार

पोत

- योनि से निकलते ही चलना आदि की सामर्थ्य से संयुक्त है वह जीव पोत कहलाता है।
- सिंह, नेवला आदि

जरायुज

- प्राणी के शरीर के ऊपर जाल समान आवरण - मांस, लहू जिसमें विस्ताररूप पाया जाता है ऐसा जो जरायु, उसमें उत्पन्न जीव जरायुज कहलाता है।
- गाय, हाथी आदि

अंडज

- शुक्र, लहूमय तथा नख के समान कठिन आवरण सहित, गोल आकार का धारक वह अण्ड, उसमें उपजने वाला जीव अंडज कहलाता है।
- चील, कबूतर आदि

जन्म भेद के स्वामी

सम्मूर्छन

- एकेंद्रिय
- विकलेन्द्रिय
- पंचेन्द्रिय तिर्यंच
- लब्धि अपर्याप्त मनुष्य

गर्भ

- पोत
- जरायुज
- अं

उपपाद

- देव
- नारकी

उववादे अच्चित्तं, गब्भे मिस्सं तु होदि सम्मुच्छे।
सच्चित्तं अच्चित्तं, मिस्सं च य होदि जोणि हु ॥85॥

- अर्थ - उपपाद जन्म की अचित्त ही योनि होती है।
- गर्भ जन्म की मिश्र योनि ही होती है।
- तथा सम्मूर्छन जन्म की सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनों तरह की योनि होती है ॥85॥

गुण योनि

सचित्त	अचित्त	सचित्ताचित्त
शीत	उष्ण	शीतोष्ण
संवृत	विवृत	संवृतविवृत

सचित्त आदि योनियाँ

सचित्त	• चेतन के साथ जो रहे, वे सचित्त हैं अर्थात् जीव सहित योनि • जैसे आलू, गाजर आदि
अचित्त	• चेतन से रहित योनि • जैसे गेहूँ के बीज
सचित्ताचित्त	• चेतन और पुद्गल सहित उत्पत्ति स्थान • जैसे माता का गर्भ

शीत आदि योनियाँ

शीत	•जिन पुद्गलों में शीत स्पर्श प्रकट है
उष्ण	•जिन पुद्गलों में उष्ण स्पर्श प्रकट है
शीतोष्ण	•शीत और उष्ण ऐसे उभयरूप पुद्गल स्कंध

संवृत आदि योनियाँ

संवृत	• जो पुद्गल स्कंध देखने में नहीं आते, जिनका आकार गुप्त है
विवृत	• जो पुद्गल स्कंध प्रकट आकार को लिए है, देखने में आता है
संवृतविवृत	• कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट पुद्गल स्कंध

जन्म के प्रकारों में सचित्त आदि योनियाँ

	सचित्त	अचित्त	सचित्ताचित्त
उपपाद	✗	✓	✗
गर्भ	✗	✗	✓
सम्मूर्छन	✓	✓	✓

उववादे सीदुसणं, सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि। उववादेयक्खेसु य, संउड वियलेसु विउलं तु ॥86॥

- अर्थ - उपपाद जन्म में शीत और उष्ण दो प्रकार की योनि होती है।
- शेष गर्भ और सम्मूर्छन जन्मों में शीत, उष्ण, मिश्र तीनों ही योनि होती है।
- उपपाद जन्मवालों की तथा एकेन्द्रिय जीवों की योनि संवृत ही होती है।
- और विकलेन्द्रियों की विवृत ही होती है ॥86॥

जन्म के प्रकारों में शीत आदि योनियाँ

	शीत	उष्ण	शीतोष्ण
उपपाद	✓	✓	✗
गर्भ	✓	✓	✓
सम्मूर्छन	✓	✓	✓

गब्भजजीवाणं पुण, मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु।
सम्मुच्छणपंचक्खे, वियलं वा विउलजोणी हु ॥87॥

- अर्थ - गर्भज जीवों की योनि नियम से मिश्र - संवृत-विवृत की अपेक्षा मिश्रित ही होती है।
- पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन जीवों की विकलेन्द्रियों की तरह विवृतयोनि ही होती है ॥87॥

जन्म के प्रकारों में संवृत आदि योनियाँ

	संवृत	विवृत	संवृत-विवृत
उपपाद	✓	✘	✘
गर्भ	✘	✘	✓
सम्मूर्छन	✓	✓	✘
- एकेन्द्रिय	✓	✘	✘
- विकलेन्द्रिय	✘	✓	✘
- पंचेन्द्रिय	✘	✓	✘

किस योनि में कौन जीव जन्म लेता है ?

जीव	योनि		
देव व नारकी	अचित्त	शीत व उष्ण	संवृत्त
गर्भज—मनुष्य व तिर्यंच	सचित्ताचित्त	तीनों प्रकार	संवृतविवृत
सम्मूर्च्छन मनुष्य व पंचेन्द्रिय तिर्यंच	तीनों प्रकार (सचित्त, अचित्त व मिश्र)	तीनों प्रकार	विवृत
विकलेन्द्रिय			
एकेन्द्रिय (पृथ्वी, वायु, प्रत्येक वनस्पति)			संवृत
जल		शीत	संवृत
अग्नि		उष्ण	संवृत
साधारण वनस्पति	सचित्त	तीनों प्रकार	संवृत

सामण्णेण य एवं, णव जोणीओ हवंति वित्थारे।
लक्खाण चदुरसीदी, जोणीओ होंति णियमेण ॥88॥

अर्थ - पूर्वोक्त क्रमानुसार सामान्य से योनियों के नियम से नव ही भेद होते हैं।

विस्तार की अपेक्षा इनके चौरासी लाख भेद होते हैं ॥88॥

णिच्चिदरधादुसत्त य, तरुदस वियलिंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो, चोद्दस मणुए सदसहस्सा ॥89॥

- अर्थ – नित्य-निगोद, इतर-निगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनमें से प्रत्येक की सात-सात लाख,
- तरु अर्थात् प्रत्येक वनस्पति की दश लाख;
- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इनमें से प्रत्येक की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की सब मिलाकर छह लाख;
- देव, नारकी, तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रत्येक की चार-चार लाख,
- मनुष्य की चौदह लाख,
- सब मिलाकर 84 लाख योनि होती है ॥89॥

84 लाख योनियाँ

तिर्यंच एकेन्द्रिय नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु (प्रत्येक की 7-7 लाख)	6 × 7	42 लाख
प्रत्येक वनस्पति		10 लाख
विकलेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय (प्रत्येक की 2-2 लाख)	3 × 2	6 लाख
पंचेन्द्रिय तिर्यंच		4 लाख
नारकी		4 लाख
देव		4 लाख
मनुष्य		14 लाख
कुल		84 लाख

उववादा सुरणिरया, गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया। सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा ॥90॥

- अर्थ - देवगति और नरकगति में उपपाद जन्म ही होता है।
- मनुष्य तथा तिर्यंचों में यथासम्भव गर्भ और सम्मूर्छन दोनों ही प्रकार का जन्म होता है,
- किन्तु लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य और एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियों का सम्मूर्छन जन्म ही होता है ॥90॥

पंचक्खतिरिक्खाओ, गब्भजसम्मुच्छिमा तिरिक्खाणं। भोगभुमा गब्भभवा, नरपुण्णा गब्भजा चेव ॥91॥

- अर्थ - कर्मभूमिया पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज तथा सम्मूर्छ्न ही होते हैं।
- भोगभूमिया तिर्यंच गर्भज ही होते हैं और
- जो पर्याप्त मनुष्य हैं वे भी गर्भज ही होते हैं ॥91॥

गतियों में जन्म-भेद

- देव
  - उपपाद
- नारकी
  - उपपाद
- तिर्यंच
  - एकेंद्रिय
    - सम्मूर्छन
  - विकलेन्द्रिय
    - सम्मूर्छन
  - पंचेन्द्रिय
    - सम्मूर्छन
    - गर्भ
- मनुष्य
  - पर्याप्त
    - गर्भ
  - अपर्याप्त
    - सम्मूर्छन

उववादगब्भजेसु य, लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण।
णरसम्मुच्छिमजीवा, लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥92॥

- अर्थ - उपपाद और गर्भ जन्मवालों में नियम से लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते और सम्मूर्छन मनुष्य नियम से लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं ॥92॥

णेरइया खलु संढा, णरतिरिये तिण्णि होंति सम्मुच्छा। संढा सुरभोगभुमा, पुरिसित्थीवेदगा चेव ॥93॥

- अर्थ - नारकी नपुंसक ही होते हैं।
- मनुष्य और तिर्यंचों के तीनों ही (स्त्री, पुरुष, नपुंसक) वेद होते हैं,
- सम्मूर्छन मनुष्य और तिर्यंच नपुंसक ही होते हैं।
- देव और भोगभूमिया जीवों के पुरुषवेद और स्त्रीवेद ही होता है ॥93॥

The picture can't be displayed.

वेद के नियम

जीव	वेद
नारकी	नपुंसक वेद
देव गति	स्त्री, पुरुष वेद
गर्भज मनुष्य और तिर्यंच	तीनों वेद
सम्मूर्छन मनुष्य और तिर्यंच	नपुंसक वेद
भोगभूमिया मनुष्य और तिर्यंच,	स्त्री, पुरुष वेद
म्लेच्छ खंड	स्त्री, पुरुष वेद

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥94॥

- अर्थ - जितना आकाश क्षेत्र शरीर रोकता है उसका नाम यहाँ अवगाहना है।
- सर्व जघन्य अवगाहना ऋजुगति से उत्पन्न होने के तीसरे समय में सूक्ष्म निगोद लब्धि-अपर्याप्तक जीव की घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। तथा
- स्वयंभूरमण समुद्र के मध्यवर्ती महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना होती है ॥94॥

अवगाहना

यहाँ शरीर की अवगाहना से तात्पर्य है।

शरीर जितना आकाश क्षेत्र रोकता है

वह अवगाहना कहलाती है ।

साहियसहस्समेकं, बारं कोसूणमेकमेक्कं च।
जोयणसहस्सदीहं, पम्मे वियले महामच्छे ॥95॥

अर्थ - पद्म (कमल), द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, महामत्स्य इनके शरीर की अवगाहना क्रम से कुछ अधिक एक हजार योजन, बारह योजन, तीन कोश, एक योजन, हजार योजन लम्बी समझनी चाहिये ॥95॥

बितिचपपुण्णजहण्णं, अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु।
सिच्छयमच्छे विंदंगुलसंखं संखगुणिदकमा ॥96॥

- अर्थ - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में अनुंधरी, कुन्थु, काणमक्षिका सिक्थक मत्स्य के क्रम से जघन्य अवगाहना होती है।
- इसमें प्रथम की घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण है और
- पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर की अवगाहना क्रम से संख्यातगुणी-संख्यातगुणी अधिक अधिक है ॥96॥

पाँच इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट-जघन्य अवगाहना एवं उसके स्वामी

जीव	उत्कृष्ट		जघन्य	
	स्वामी	कितनी (लम्बाई)	स्वामी	कितनी (घनफल)
एकेन्द्रिय	पद्म (कमल)	कुछ अधिक 1000 यो.	सूक्ष्म निगोदिया लब्धि-अपर्याप्त	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}$
द्वीन्द्रिय	शंख	12 योजन	अनुंधरी	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}}$
त्रीन्द्रिय	रक्त बिच्छू	3 कोस	कुंथु	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}}$ (आगे-आगे पूर्व से संख्यात गुणा)
चतुरिन्द्रिय	भ्रमर	1 योजन	काणमक्षिका	
पंचेन्द्रिय	महामत्स्य	1000 योजन	सिक्थक मत्स्य	

सुहमणिवातेआभू, वातेआपुणिपदिट्ठिदं इदरं।
बितिचपमादिल्लाणं, एयाराणं तिसेढीय ॥97॥

- अर्थ: एक कोठे में सूक्ष्म निगोदिया, वायुकायिक, तेजकायिक, जलकायिक, पृथ्वीकायिक – इनका क्रम से स्थापन करना ।
- इसके आगे दूसरे कोठे में बादर वायुकायिक, तेजकायिक, जलकायिक, पृथ्वीकायिक, निगोदिया और प्रतिष्ठित प्रत्येक – इनका क्रम से स्थापन करना ।
- इसके आगे तीसरे कोठे में अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय का क्रम से स्थापन करना ।
- इसके आगे उक्त 16 स्थानों में से आदि के 11 स्थानों की 3 श्रेणी मांडनी चाहिए ॥97॥

64 अवगाहना यंत्र की विधि

प्रथम कोठा

1 निगोदिया
2 वायुकायिक
3 तेजकायिक
4 जलकायिक
5 पृथ्वीकायिक

(सभी सूक्ष्म)

द्वितीय कोठा

6 वायुकायिक
7 तेजकायिक
8 जलकायिक
9 पृथ्वीकायिक
10 निगोदिया
11 प्रतिष्ठित प्रत्येक

(सभी बादर)

तीसरा कोठा

12 अप्रतिष्ठित प्रत्येक
13 द्वीन्द्रिय
14 त्रीन्द्रिय
15 चतुरिन्द्रिय
16 पंचेन्द्रिय

(इन सभी में सूक्ष्म-बादर का भेद नहीं होता, सभी नियम से बादर ही होते हैं)

प्रथम तीन कोठों के 16 जीवसमासों में अपर्याप्तकों की जघन्य अवगाहना जानना

चौथा	17 निगोदिया 20 वायु 23 तेज 26 जल 29 पृथ्वी (सभी सूक्ष्म)	32 वायु 35 तेज 38 जल 41 पृथ्वी 44 निगोद 47 प्रतिष्ठित प्रत्येक (सभी बादर)	**सातवाँ**
पाँचवा	18 निगोद 21 वायु 24 तेज 27 जल 30 पृथ्वी (सभी सूक्ष्म)	33 वायु 36 तेज 39 जल 42 पृथ्वी 45 निगोद 48 प्रतिष्ठित प्रत्येक (सभी बादर)	**आठवा**
छठा	19 निगोदिया 22 वायु 25 तेज 28 जल 31 पृथ्वी (सभी सूक्ष्म)	34 वायु 37 तेज 40 जल 43 पृथ्वी 46 निगोद 49 प्रतिष्ठित प्रत्येक (सभी बादर)	**नवा**

अपदिट्ठिदपत्तेयं, बितिचपतिचबिअपदिट्ठिदं सयलं। तिचविअपदिट्ठिदं च य, सयलं बादालगुणिदकमा ॥98॥

- अर्थ - अगले कोठे में अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय का स्थापन करना।
- इसके आगे के कोठे में क्रम से त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक और पंचेन्द्रिय का स्थापन करना।
- इससे आगे के कोठे में त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक तथा पंचेन्द्रिय का क्रम से स्थापन करना।
- इन सम्पूर्ण चौंसठ स्थानों में ब्यालीस स्थान उत्तरोत्तर गुणितक्रम हैं ॥98॥

दशम कोठा	ग्यारहवा कोठा	बारहवा कोठा
50 अप्रतिष्ठित प्रत्येक	55 त्रीन्द्रिय	60 त्रीन्द्रिय
51 द्वीन्द्रिय	56 चतुरिन्द्रिय	61 चतुरिन्द्रिय
52 त्रीन्द्रिय	57 द्वीन्द्रिय	62 द्वीन्द्रिय
53 चतुरिन्द्रिय	58 अप्रतिष्ठित प्रत्येक	63 अप्रतिष्ठित प्रत्येक
54 पंचेन्द्रिय	59 पंचेन्द्रिय	64 पंचेन्द्रिय

अवरमपुण्णं पढमं, सोलं पुण पढमविदियतदियोली। पुण्णिदरपुण्णयाणं, जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं ॥99॥

- अर्थ - आदि के सोलह स्थान जघन्य अपर्याप्तक के हैं और
- प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी क्रम से पर्याप्तक, अपर्याप्तक तथा पर्याप्तक जीवों की है और
- उनकी यह अवगाहना क्रम से जघन्य, उत्कृष्ट और उत्कृष्ट समझनी चाहिये ॥99॥

पुण्णजहण्णं तत्तो, वरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं।
बीपुण्णजहण्णो त्ति असंखं संखं गुणं तत्तो ॥100॥

- अर्थ - श्रेणी के आगे के प्रथम कोठे में (ऊपर की पंक्ति के छट्ठे कोठे में) पर्याप्तकों की जघन्य और दूसरे कोठे में अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट तथा तीसरे कोठे में पर्याप्तकों की उत्कृष्ट अवगाहना समझनी चाहिये।
- द्वीन्द्रिय पर्याप्त की जघन्य अवगाहना पर्यन्त असंख्यात का गुणाकार है और इसके आगे संख्यात का गुणाकार है ॥100॥

1	2	3	4	7	10	11	12
जघन्य अपर्याप्त सूक्ष्म	जघन्य अपर्याप्त बादर	जघन्य अपर्याप्त बादर	जघन्य पर्याप्त सूक्ष्म	जघन्य पर्याप्त बादर	जघन्य पर्याप्त बादर	उत्कृष्ट अपर्याप्त बादर	उत्कृष्ट पर्याप्त बादर
		5	उत्कृष्ट अपर्याप्त सूक्ष्म	उत्कृष्ट अपर्याप्त बादर	8		
		6	उत्कृष्ट पर्याप्त सूक्ष्म	उत्कृष्ट पर्याप्त बादर	9		

64 अवगाहनाओं का यंत्र

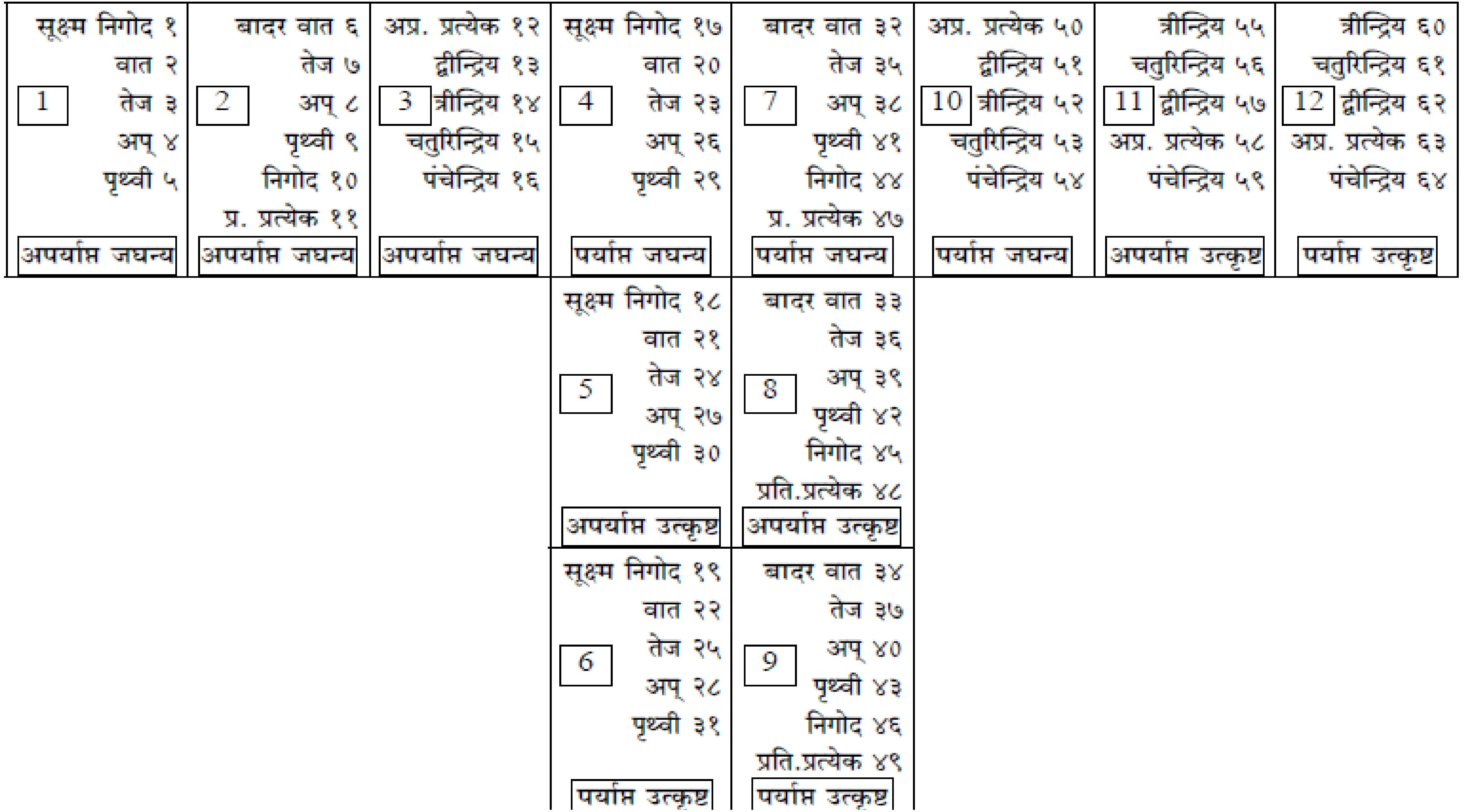

सूक्ष्म निगोद १ वात २ 1 तेज ३ अप् ४ पृथ्वी ५ अपर्याप्त जघन्य	बादर वात ६ तेज ७ 2 अप् ८ पृथ्वी ९ निगोद १० प्र. प्रत्येक ११ अपर्याप्त जघन्य	अप्र. प्रत्येक १२ द्वीन्द्रिय १३ 3 त्रीन्द्रिय १४ चतुरिन्द्रिय १५ पंचेन्द्रिय १६ अपर्याप्त जघन्य	सूक्ष्म निगोद १७ वात २० 4 तेज २३ अप् २६ पृथ्वी २९ पर्याप्त जघन्य	बादर वात ३२ तेज ३५ 7 अप् ३८ पृथ्वी ४१ निगोद ४४ प्र. प्रत्येक ४७ पर्याप्त जघन्य	अप्र. प्रत्येक ५० द्वीन्द्रिय ५१ 10 त्रीन्द्रिय ५२ चतुरिन्द्रिय ५३ पंचेन्द्रिय ५४ पर्याप्त जघन्य	त्रीन्द्रिय ५५ चतुरिन्द्रिय ५६ 11 द्वीन्द्रिय ५७ अप्र. प्रत्येक ५८ पंचेन्द्रिय ५९ अपर्याप्त उत्कृष्ट	त्रीन्द्रिय ६० चतुरिन्द्रिय ६१ 12 द्वीन्द्रिय ६२ अप्र. प्रत्येक ६३ पंचेन्द्रिय ६४ पर्याप्त उत्कृष्ट
			सूक्ष्म निगोद १८ वात २१ 5 तेज २४ अप् २७ पृथ्वी ३० अपर्याप्त उत्कृष्ट	बादर वात ३३ तेज ३६ 8 अप् ३९ पृथ्वी ४२ निगोद ४५ प्रति.प्रत्येक ४८ अपर्याप्त उत्कृष्ट			
			सूक्ष्म निगोद १९ वात २२ 6 तेज २५ अप् २८ पृथ्वी ३१ पर्याप्त उत्कृष्ट	बादर वात ३४ तेज ३७ 9 अप् ४० पृथ्वी ४३ निगोद ४६ प्रति.प्रत्येक ४९ पर्याप्त उत्कृष्ट			

गुणकार

द्वीन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना के स्थान पर्यंत (51 नम्बर तक) असंख्यात का गुणकार है।

इसके आगे (52 से 64 तक) संख्यात का गुणकार है ।

इन 42 गुणाकार के स्थानों में	
प्रथम 29 स्थान	उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे हैं
अंतिम 13 स्थान	उत्तरोत्तर संख्यात गुणे हैं

सुहुमेदरगुणगारो, आवलिपल्लाअसंखभागो दु।
सट्ठाणे सेढिगया, अहिया तत्थेक्कपडिभागो ॥101॥

- अर्थ - सूक्ष्म और बादरों का गुणकार स्वस्थान में क्रम से आवली और पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। और
- श्रेणीगत बाईस स्थान अपने-अपने एक-एक प्रतिभागप्रमाण अधिक अधिक हैं ॥101॥

गुणकार और अधिककार का प्रमाण

29 स्थानों में	सूक्ष्म का गुणकार	$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
	बादर का गुणकार	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$
13 स्थानों (52 से 64) का गुणकार		संख्यात
22 स्थानों में	सूक्ष्म एवं बादर का अधिककार	$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$

गुणकार

$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$

- सूक्ष्म से सूक्ष्म
- बादर से सूक्ष्म

$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$

- बादर से बादर
- सूक्ष्म से बादर

64 स्थानों में कौन गुणित क्रम और कौन अधिक क्रम हैं?

उत्तरोत्तर गुणित क्रम			उत्तरोत्तर अधिक क्रम		कुल
ऊपर के 8 कोठे	1 से 3 कोठों के	– 16	5 और 6 कोठे के	– 10 स्थान	
	4 और 7 के	– 11	8 और 9 कोठे के	– 12 स्थान	
	10 से 12 कोठों के	– 15			
	कुल	= 42	कुल	= 22	64

जहाँ असंख्यात गुणित क्रम है वहाँ-

सूक्ष्म जीव की अवगाहना निकालने के लिए पूर्व की अवगाहना को $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ से गुणा करेंगे

बादर जीव की अवगाहना निकालने के लिए पूर्व की अवगाहना को $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ से गुणा करेंगे

सूक्ष्म वायु अप. ज. अवगाहना (2)	= सूक्ष्म नि. अप. ज. अवगाहना (1) × $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
सूक्ष्म नि. पर्याप्त ज. अवगाहना (17)	= पंचेन्द्रिय अप. ज. अवगाहना (16) × $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
बादर वायु अप. ज. अवगाहना (6)	= सूक्ष्म पृथ्वी अप. ज. अवगाहना (5) × $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$
बादर अग्नि (तेज) अप. ज. (7)	= बादर वायु अप. ज. अवगाहना (6) × $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$

जहाँ अधिक क्रम है वहाँ-

पूर्व की अवगाहना को $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ का भाग देंगे ।

जो एक भाग आयेगा, उसे पूर्व की अवगाहना में जोड़ देंगे ।

विवक्षित जीव की अवगाहना = पूर्व जीव की अवगाहना + $\dfrac{\text{पूर्व जीव की अव.}}{\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}}$

सूक्ष्म निगोद अप. उत्कृष्ट अवगाहना (18) =	सूक्ष्म निगोद पर्याप्त ज. अव. (17) + $\dfrac{\text{सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जघन्य अव.}}{\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}}$
बादर वायु अप. उत्कृष्ट अवगाहना (33) =	बादर वायु पर्याप्त जघन्य अव. (32) + $\dfrac{\text{बादर वायु पर्याप्त जघन्य अव.}}{\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}}$

उदाहरण

$100 + \frac{100}{5}$

$\frac{5 \times 100}{5} + \frac{100}{5}$

$\frac{100 \times (5+1)}{5}$

$\frac{100 \times 6}{5}$ = 120; जो कि $100 + \frac{100}{5}$ का उत्तर है।

अर्थात् $\frac{\text{राशि} \times (\text{भागहार}+1)}{\text{भागहार}}$ करने पर अधिकरूप संख्या निकल कर आती है।

अतः जब आवली का असंख्यातवा भाग अधिक वाली अवगाहना आएगी, तब उस मूल अवगाहना में (भागहार + 1) का गुणा करेंगे और भागहार का भाग देंगे ।

अर्थात् 18 नंबर की अवगाहना

$$= 17 \text{ नंबर की अवगाहना} \times \frac{\text{भागहार} + 1}{\text{भागहार}}$$

$$= \frac{\text{घ}}{s^9 \times p^8 \times a^4} \times \frac{a^{22}}{a1^{22}} \times \frac{a1}{a} = \frac{\text{घ}}{s^9 \times p^8 \times a^4} \times \frac{a^{21}}{a1^{21}}$$

इसी प्रकार सारी अधिक वाली अवगाहना के लिए समझना ।

अवरुवरि इगिपदेसे, जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए। आदी णिरंतरमदो, एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥102॥

- अर्थ - जघन्य अवगाहना के प्रमाण में एक प्रदेश और मिलाने से जो प्रमाण होता है वह असंख्यातभागवृद्धि का आदिस्थान है।
- इसके आगे भी क्रम से एक एक प्रदेश की वृद्धि करनी चाहिये ॥102॥

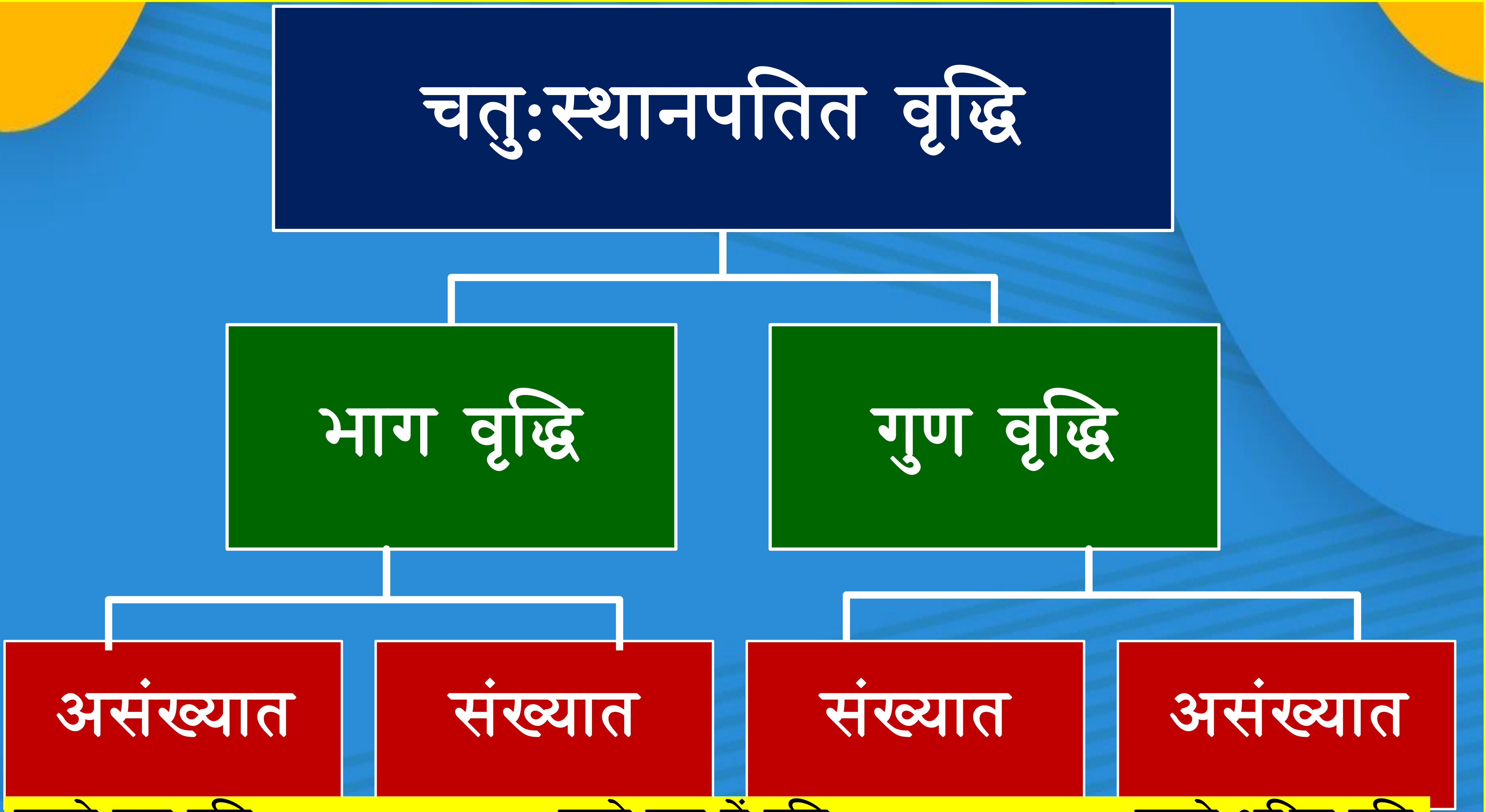

चतु:स्थानपतित वृद्धि

भाग वृद्धि

गुण वृद्धि

असंख्यात

संख्यात

संख्यात

असंख्यात

सबसे कम वृद्धि-----------------------बढ़ते क्रम में वृद्धि-----------------------सबसे अधिक वृद्धि

भागवृद्धियाँ - उदाहरण

असंख्यात भागवृद्धि	संख्यात भागवृद्धि
मूलराशि + $\frac{\text{मूलराशि}}{\text{असंख्यात}}$ = वृद्धि सहित राशि	मूलराशि + $\frac{\text{मूलराशि}}{\text{संख्यात}}$ = वृद्धि सहित राशि
मानाकि असंख्यात = 5	मानाकि संख्यात = 2
$1000 + \frac{1000}{5} = 1000 + 200 = 1200$	$1000 + \frac{1000}{2} = 1000 + 500 = 1500$
तो 1000 की असंख्यात भागवृद्धि = 1200	तो 1000 की संख्यात भागवृद्धि = 1500

गुणवृद्धियाँ
-
उदाहरण

संख्यात गुणवृद्धि	असंख्यात गुणवृद्धि
मूलराशि × संख्यात	मूलराशि × असंख्यात
1000 × 2 = 2000	1000 × 5 = 5000
इसी प्रकार वास्तविक गणित में जानना चाहिए ।	

अवगाहना यंत्र जानने के लिये उदाहरण

जघन्य अवगाहना = 4800

उत्कृष्ट संख्यात = 15

जघन्य परित असंख्यात = 16

असंख्यात भागवृद्धि

- जघन्य अवगाहना — 4800
- दूसरी अवगाहना एक प्रदेश अधिक है। एक प्रदेश बढ़ाने के लिए जघन्य अवगाहना में किसका भाग लगाया जाए ?
- $\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{जघन्य अवगाहना}} = 1$
- इस एक को जघन्य अवगाहना में जोड़ने पर अवगाहना का दूसरा विकल्प आता है।
- अतः द्वितीय भेद = जघन्य अवगाहना + $\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{जघन्य अवगाहना}} =$
- जघन्य अवगाहना + 1 = 4800 + 1 = 4801
- यह प्रथम असंख्यात भागवृद्धि हुई। यह असंख्यात भागवृद्धि है, क्योंकि मूल संख्या में असंख्यात का भाग देकर प्राप्त लब्ध ही मूल संख्या में बढ़ाया है।

तीसरी अवगाहना जघन्य अवगाहना से 2 प्रदेश अधिक है। 2 लाने हेतु जघन्य अवगाहना में किसका भाग दिया जाए ?

$$\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{2}} = \frac{4800}{\frac{4800}{2}} = 2$$

इसे जघन्य अवगाहना में जोड़ने पर अवगाहना का तीसरा विकल्प प्राप्त होता है।

अतः तीसरा भेद= 4800 + 2 = 4802

यह दूसरी असंख्यात भाग वृद्धि हुई।

ऐसे ही 4, 5, 6 आदि प्रदेश अधिक क्रम से बढ़ाते जाना।

ऐसी असंख्यात भागवृद्धि कब तक होगी ?

जब तक जघन्य असंख्यात से भाग देकर वृद्धि नहीं हो जाती, तब तक । अर्थात्

$$\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{जघन्य परित असंख्यात}} = \frac{4800}{16} = 300$$

$$4800 + 300 = 5100$$

यह असंख्यात भागवृद्धि का अंतिम स्थान है। इससे छोटा असंख्यात नहीं है, जिससे भाग देकर असंख्यात भागवृद्धि की जा सके।

असंख्यात भागवृद्धि के प्रकार

5100	असंख्यात भागवृद्धि का अंतिम स्थान
5099	असंख्यात भागवृद्धि के मध्यम स्थान
5098	
.	
.	
5000	
.	
.	
.	
4802	
4801	असंख्यात भागवृद्धि का आदि स्थान

अवक्तव्य भागवृद्धि

अगली अवगाहना का प्रकार = 4800 + 301 = 5101

इस वृद्धि के लिए भागहार क्या है?

$$\frac{4800}{15\frac{285}{301}} = 301$$

यह कौन-सी वृद्धि है ?

इसमें भागहार $15\frac{285}{301}$ है, जो कि उत्कृष्ट संख्यात से बड़ा है और जघन्य असंख्यात से छोटा है।

ऐसी वृद्धि को अवक्तव्य भागवृद्धि कहा जाता है ।

यह अवक्तव्य भागवृद्धि का आदि स्थान है।

अवक्तव्य भागवृद्धि

दूसरी अवक्तव्य भागवृद्धि = 4800 + 302 = 5102

इसका भागहार $15\frac{270}{302}$

अगली अवक्तव्य भागवृद्धि = 4800 + 303 = 5103

इसका भागहार = $15\frac{255}{303}$

इस प्रकार अवक्तव्य भागवृद्धि कब तक होगी ?

जब तक उत्कृष्ट संख्यात से भाग देकर प्राप्त लब्ध में से एक कम प्रमाण वृद्धि नहीं हो जाती। अर्थात् —

$$\frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{उत्कृष्ट संख्यात}} - 1 = \frac{4800}{15} - 1 = 320 - 1 = 319$$

$$4800 + 319 = 5119$$

यह अवक्तव्य भागवृद्धि का अंतिम स्थान है।

अवक्तव्य भागवृद्धि के प्रकार

5119	→ अवक्तव्य भागवृद्धि का अन्त स्थान
⋮	अवक्तव्य भागवृद्धि के मध्यम स्थान
5103	
5102	
5101	→ अवक्तव्य भागवृद्धि का आदि स्थान

संख्यात भागवृद्धि

पूर्वोक्त अंतिम भेद में 1 मिलाने पर संख्यात भागवृद्धि प्रारंभ होती है।

$5119 + 1 = 5120$

अथवा जघन्य अवगाहना $+ \frac{\text{जघन्य अवगाहना}}{\text{उत्कृष्ट संख्यात}} =$ संख्यात भागवृद्धि का प्रथम स्थान

$4800 + \frac{4800}{15} = 4800 + 320 = 5120$

यह संख्यात भागवृद्धि है, क्योंकि मूल संख्या में संख्यात का भाग देकर प्राप्त लब्ध ही मूल संख्या में बढ़ाया है।

अगली अवगाहनायें

$$4800 + \frac{4800}{14\frac{306}{321}} = 4800 + 321 = 5121$$

यह संख्यात भागवृद्धि का द्वितीय स्थान है।

इसके पश्चात् एक-एक प्रदेश बढ़कर संख्यात भागवृद्धि ही चलती है। जब तक कि जघन्य संख्यात भागहार नहीं हो जाता।

$$4800 + \frac{4800}{2} = 4800 + 2400 = 7200$$

यह संख्यात भागवृद्धि का अंतिम स्थान है।

संख्यात भागवृद्धि के प्रकार

7200	→ संख्यात भागवृद्धि का अंतिम स्थान
. . . . .	संख्यात भागवृद्धि के मध्यम स्थान
5123	
5121	
5120	→ संख्यात भागवृद्धि का आदि स्थान

अवक्तव्य वृद्धि

इसके पश्चात् एक और प्रदेश की वृद्धि होने पर अगली अवगाहना होती है। $7200 + 1 = 7201$

उसका भागहार — $\frac{4800}{1\frac{2399}{2401}} = 2401$

$4800 + 2401 = 7201$

चूंकि यह भागहार जघन्य संख्यात (2) से कम है, अतः यह संख्यात भागवृद्धि नहीं कहलाती। इसे अवक्तव्य वृद्धि कहते हैं। यह अवक्तव्य वृद्धि का आदि स्थान है।

अवक्तव्य वृद्धि

एक और प्रदेश की वृद्धि होने पर अगली अवगाहना आती है। इसका भागहार — $1\frac{2398}{2402}$

इसे जघन्य अवगाहना में भाग देने पर वृद्धि का प्रमाण आता है।

$$\frac{4800}{1\frac{2398}{2402}} = 2402$$

$4800 + 2402 = 7202$

यह अवक्तव्य वृद्धि का दूसरा स्थान है।

इस प्रकार जब तक (जघन्य अवगाहना – 1) प्रमाण प्रदेश नहीं बढ़ जाते, तब तक अवक्तव्य वृद्धि 1-1 प्रदेश बढ़ते क्रम से करते जाना।

अवक्तव्य वृद्धि का अंतिम स्थान : $4800 + (4800 - 1) = 9599$

अवक्तव्य वृद्धि के प्रकार

9599	→ अवक्तव्य वृद्धि का अंतिम स्थान
9598	अवक्तव्य वृद्धि के मध्यम स्थान
⋮	
7202	
7201	→ अवक्तव्य वृद्धि का प्रारंभ स्थान

संख्यात गुणवृद्धि

इसके आगे 1 प्रदेश की वृद्धि होती है। वहां से संख्यात गुणवृद्धि प्रारंभ होती है। क्योंकि जघन्य अवगाहना में जघन्य संख्यात का गुणा करके यह स्थान आया है।

9599 + 1 = 9600 अथवा 4800 × 2 = 9600

इसके आगे 1-1 प्रदेश की वृद्धि करते हुए संख्यात गुणवृद्धि के स्थान होते हैं।

9601, 9602 . . . . . इत्यादि ।

कब तक संख्यात गुणवृद्धि होती है ?

जब तक उत्कृष्ट संख्यात से गुणाकर स्थान उत्पन्न नहीं हो जाता।

जघन्य अवगाहना × उत्कृष्ट संख्यात

4800 × 15 = 72,000

यह संख्यात गुणवृद्धि का अंतिम स्थान है।

संख्यात गुणवृद्धि के प्रकार

72000	→ संख्यात गुणवृद्धि का अंतिम भेद
71999	संख्यात गुणवृद्धि के मध्यम स्थान
71998	
⋮	
9602	
9601	
9600	→ संख्यात गुणवृद्धि का आदि स्थान

अवक्तव्य गुणवृद्धि

इसमें 1 प्रदेश मिलाने पर अवक्तव्य गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है क्योंकि यह स्थान उत्कृष्ट संख्यात से अधिक संख्या का गुणा करने पर उत्पन्न हुआ है।

$$4800 \times 15\frac{1}{4800} = 72001$$

इसी प्रकार एक-एक प्रदेश की वृद्धि करते हुए अवक्तव्य गुणवृद्धि होती है।

कब तक अवक्तव्य गुणवृद्धि होती है ?

{(जघन्य अवगाहना × जघन्य परित असंख्यात) – 1} प्राप्त होने तक अवक्तव्य गुणवृद्धि ही चलती है।

$$\{(4800 \times 16) - 1\} = 76800 - 1 = 76799$$

अवक्तव्य गुणवृद्धि के प्रकार

76799	→ अवक्तव्य गुणवृद्धि का अंतिम स्थान
76798	
⋮	
72002	
72001	→ अवक्तव्य गुणवृद्धि का प्रारंभ स्थान

असंख्यात गुणवृद्धि

अवक्तव्य गुणवृद्धि के अंतिम स्थान में एक प्रदेश की वृद्धि करने पर असंख्यात गुणवृद्धि प्रारंभ होती है। क्योंकि यहां जघन्य अवगाहना का गुणकार असंख्यात हो गया है।

76799 + 1 = 76800

याने 4800 × 16 = 76800

यहां से एक-एक प्रदेश बढ़ते हुए असंख्यात गुणवृद्धि ही चलती है।

कब तक असंख्यात गुणवृद्धि होगी?

जब तक $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण गुणा होकर सूक्ष्म वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना नहीं आ जाती,

तब तक 1-1 प्रदेश की वृद्धि द्वारा असंख्यात गुणवृद्धि होती है।

$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}} = 25$ माना,

तो अंतिम स्थान = जघन्य अवगाहना × $\frac{\text{आ.}}{\text{असं.}}$

$4800 \times 25 = 1,20,000$

असंख्यात गुणवृद्धि के प्रकार

1,20,000	सूक्ष्म वायुकायिक जघन्य अवगाहना
⋮	
76,801	
76,800	→ असंख्यात गुणवृद्धि का आदि स्थान

अवक्तव्य वृद्धियाँ

असंख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागवृद्धि के बीच होने वाली वृद्धि

- अवक्तव्य भागवृद्धि

संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि के बीच होने वाली वृद्धि

- अवक्तव्य भागवृद्धि

संख्यात गुणवृद्धि और असंख्यात गुणवृद्धि के बीच होने वाली वृद्धि

- अवक्तव्य गुणवृद्धि

प्रश्न — जघन्य अवगाहना से लेकर दुगुनी अवगाहना तक अवगाहना के कितने भेद पाए जाएंगे? संख्यात या असंख्यात?

प्रश्न — अवक्तव्य वृद्धि के कितने स्थान पाए जाएंगे? संख्यात या असंख्यात?

अवरोग्गाहणमाणे, जहण्णपरिमिदअसंखरासिहिदे। अवरस्सुवरिं उड्ढे, जेट्ठमसंखेज्जभागस्स ॥103॥

- अर्थ - जघन्य अवगाहना के प्रमाण में जघन्य परीतासंख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने प्रदेश जघन्य अवगाहना में मिलाने पर असंख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है ॥103॥

तस्सुवरि इगिपदेसे, जुदे अवत्तव्वभागपारंभो।
वरसंखमवहिदवरे, रूऊणे अवर उवरि जुदे ॥104॥

- अर्थ - असंख्यातभागवृद्धि के उत्कृष्ट स्थान के आगे एक प्रदेश की वृद्धि करने से अवक्तव्य भागवृद्धि का प्रारम्भरूप स्थान होता है।
- इसमें एक-एक प्रदेश की वृद्धि होते-होते, जब जघन्य अवगाहना के प्रमाण में उत्कृष्ट संख्या का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमें एक कम करके जघन्य के प्रमाण में मिला दिया जाय तब … ॥104॥

तव्वड्ढीए चरिमो, तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा। संखेज्जभागउड्ढी, उवरिमदो रूवपरिवड्ढी ॥105॥

- अर्थ - ...अवक्तव्यभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है।
- इसके आगे एक प्रदेश और मिलाने से संख्यात भागवृद्धि का प्रथम स्थान होता है।
- इसके भी आगे एक एक प्रदेश की वृद्धि करते करते जब ... ॥105॥

अवरद्धे अवरुवरिं, उड्ढे तव्वड्ढि परिसमत्ती हु।
रूवे तदुवरि उड्ढे, होदि अवत्तव्वपढमपदं ॥106॥
रूऊणवरे अवरुस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं।
तम्हि पदेसे उड्ढे, पढमा संखेज्जगुणवड्ढी ॥107॥

अर्थ - जघन्य अवगाहना का जितना प्रमाण है उसमें जघन्य अवगाहना का ही आधा प्रमाण और मिला दिया जाय तब संख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसके आगे एक प्रदेश की वृद्धि करने पर अवक्तव्यवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ॥106॥

अर्थ - जघन्य अवगाहना के प्रमाण में एक कम जघन्य अवगाहना का ही प्रमाण और मिलाने से अवक्तव्य वृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसमें एक प्रदेश और मिलाने से संख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ॥107॥

अवरे वरसंखगुणे, तच्चरिमो तम्हि रूवसंजुत्ते।
ओगाहणम्हि पढमा, होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥108॥
अवरपरित्तासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे।
तच्चरिमो रूवजुदे, तम्हि असंखेज्जगुणपढमं ॥109॥

- अर्थ - जघन्य अवगाहना को उत्कृष्ट संख्यात से गुणा करने पर संख्यात गुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इस संख्यात गुणवृद्धि के उत्कृष्ट स्थान में ही एक प्रदेश की वृद्धि करने पर अवक्तव्य गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ॥108॥
- अर्थ - जघन्य अवगाहना का जघन्य परीतासंख्यात के साथ गुणा करके उसमें से एक घटाने पर अवक्तव्य गुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसमें एक प्रदेश की वृद्धि होने पर असंख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ॥109॥

रूवुत्तरेण तत्तो, आवलियासंखभागगुणगारे।
तप्पाउग्गे जादे, वाउस्सोग्गाहणं अवरं ॥110॥

अर्थ - इस असंख्यात गुणवृद्धि के प्रथम स्थान के ऊपर क्रम से एक-एक प्रदेश की वृद्धि होते-होते जब सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक की जघन्य अवगाहना की उत्पत्ति के योग्य आवली के असंख्यातवें भाग का गुणाकार उत्पन्न हो जाय तब वायुकाय की जघन्य अवगाहना होती है ॥110॥

एवं उवरि वि णेओ, पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं। सव्वत्थेक्केक्कम्हि य, जीवसमासाण विच्चाले ॥111॥

अर्थ - जिस प्रकार सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त से लेकर सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक की जघन्य अवगाहना पर्यन्त प्रदेश वृद्धि के क्रम से अवगाहना के स्थान बताये हैं, उस ही प्रकार आगे भी वायु से तेज और क्रम से तेजस्कायिक से लेकर पर्याप्त पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त सम्पूर्ण जीवसमासों के प्रत्येक अन्तराल में प्रदेशवृद्धिक्रम से अवगाहना-स्थानों को समझना चाहिये ॥111॥

किन स्थानों में कौन-सी वृद्धि होती है?

सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त के जघन्य स्थान (क्रमांक 1) से द्वींद्रिय पर्याप्त के जघन्य (क्रमांक 51) तक के स्थानों में

- चतुःस्थान पतित वृद्धि

द्वींद्रिय पर्याप्त के जघन्य स्थान (क्रमांक 51) से पंचेद्रिय पर्याप्त के उत्कृष्ट (क्रमांक 64) तक के स्थानों में

- तीन-स्थान पतित वृद्धि
- इन स्थानों में असंख्यात गुणवृद्धि नहीं होती है।

हेट्ठा जेसिं जहण्णं, उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ।
तत्थंतरगा सव्वे, तेसिं ओगाहणविअप्पा ॥112॥

अर्थ – पहले जिन जीवों की जघन्य अवगाहना का और अनंतर उत्कृष्ट अवगाहना का जहाँ पर वर्णन किया गया है, उनके मध्य में अवगाहना के जितने भेद हैं उन सबका उसी जीव की अवगाहना के भेदों में अन्तर्भाव होता है ॥112॥

सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त की अवगाहना के भेद

- जघन्य भेद से प्रारंभ करके उत्कृष्ट भेद तक के जितने भेद हैं, वह सब विवक्षित जीव के अवगाहना के प्रकार हैं ।
- जैसे सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना प्रथम स्थान पर है। इसी की उत्कृष्ट अवगाहना 18वे स्थान पर है ।
- तो प्रथम स्थान से लेकर 18वे स्थान पहुँचने तक जितने गुणकार किये हैं, वे सब सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त के मध्यम अवगाहना के भेद हैं।
- जैसे जघन्य अवगाहना 4800 मानी है। मानाकि 18वे भेद पर पहुंचते हुये उत्कृष्ट अवगाहना 48,00,000 हो गयी । तो सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त की अवगाहना के प्रकार (48 लाख – 4800) हुये ।
- अर्थात् बीच के सारे भेद जो अन्य जीवों की अवगाहना के हैं, वे सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त के भी पाये जाते हैं। वे सभी इसकी मध्यम अवगाहनायें हैं ।
- इसी प्रकार सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की अवगाहना के भेद क्रमांक 2 से क्रमांक 21 तक पाये जाते हैं। इतने सब असंख्यात भेद सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की अवगाहना के होते हैं।
- इसी प्रकार अन्य सभी प्रकार के जीवों के लिये समझना चाहिये ।

कुल

जिन पुद्‌गल स्कंधों से शरीर बनता है, उनके भेद का नाम कुल है ।

जैसै शरीर के पुद्‌गल, आकारादि के भेद से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में हाथी, घोड़ा इत्यादि भेद हैं । वे अलग-अलग प्रकार के कुल कहलाते हैं ।

बावीस सत्त तिण्णि य, सत्त य कुलकोडिसयसहस्साइं।
णेया पुढविदगागणि-वाउक्कायाण परिसंखा ॥113॥
कोडिसयसहस्साइं, सत्तट्ठ णव य अट्ठवीसाइं।
बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-हरिदकायाणं ॥114॥

अर्थ - पृथिवीकायिक जीवों के कुल बाईस लाख कोटि,

- जलकायिक जीवों के कुल सात लाख कोटि,
- अग्निकायिक जीवों के कुल तीन लाख कोटि और
- वायुकायिक जीवों के कुल सात लाख कोटि हैं ॥113॥

अर्थ - द्वीन्द्रिय जीवों के कुल सात लाख कोटि,

- त्रीन्द्रिय जीवों के कुल आठ लाख कोटि,
- चतुरिन्द्रिय जीवों के कुल नौ लाख कोटि, और
- वनस्पतिकायिक जीवों के कुल 28 लाख कोटि हैं ॥114॥

अद्धं तेरस बारस, दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं। जलचर-पक्खि-चउप्पय-उरपरिसप्पेसु णव होंति ॥115॥

- अर्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख कोटि,
- पक्षियों के बारह लाख कोटि,
- पशुओं के दश लाख कोटि, और
- छाती के सहारे से चलने वाले दुमुही आदि के नौ लाख कोटि कुल हैं ॥115॥

छप्पंचाधियवीसं, बारसकुलकोडिसदसहस्साइं।
सुर-णेरइय-णराणं जहाकमं होंति णेयाणि ॥116॥
एया य कोडिकोडी, सत्ताणउदी य सदसहस्साइं।
पण्णं कोडिसहस्सा, सव्वंगीणं कुलाणं य ॥117॥

अर्थ - देव, नारकी तथा मनुष्य इनके कुल क्रम से छब्बीस लाख कोटि, पच्चीस लाख कोटि तथा बारह लाख कोटि हैं। जो कि भव्यजीवों के लिये ज्ञातव्य हैं ॥116॥

अर्थ - इस प्रकार पृथिवीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण जीवों के समस्त कुलों की संख्या एक कोड़ाकोड़ी तथा सत्तानवे लाख और पचास हजार कोटि है ॥117॥

जीवों के कुलों की संख्या

जीव	कुल (लाख कोटि में)
पृथ्वीकायिक	22
जलकायिक	7
अग्निकायिक	3
वायुकायिक	7
वनस्पतिकायिक	28
द्वीन्द्रिय	7
त्रीन्द्रिय	8
चतुरिन्द्रिय	9

जीव	कुल (लाख कोटि में)
पंचेन्द्रिय तिर्यंच—जलचर	12.5
पंचेन्द्रिय तिर्यंच—नभचर	12
पंचेन्द्रिय तिर्यंच—थलचर	10
पंचेन्द्रिय तिर्यंच—छाती से चलने वाले	9
नारकी	25
देव	26
मनुष्य	12
कुल जोड़	197.5

= 1 करोड़ 97 लाख 50 हजार करोड़ = 1,97,50,000,00,00,000

- Reference : गोम्मटसार जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका, गोम्मटसार जीवकांड - रेखाचित्र एवं तालिकाओं में

Presentation developed by

Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: , 94066-82889